National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2024; 1(56): 226-227
© 2024 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डा. ओंकार यशवंत सेलूकर
सहायकाचार्य वेद विभाग,
श्री लालबहादूरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृत-विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- ११००१६

Correspondence:
डा. ओंकार यशवंत सेलूकर
सहायकाचार्य वेद विभाग,
श्री लालबहादूरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृत-विश्वविद्यालय, नई दिल्ली- ११००१६

अग्नितत्व।

डा. ओंकार यशवंत सेलूकर

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव॥ यद्भद्रं तन्न आसुव॥

इस संसार के उत्पत्ति और प्रलय के कारणों का यदि सही से किसी ने अनुमान लगाया है तो वह अपने ऋषियों ने ही लगाया है; यह बात समस्त विश्व मुक्तकंठ से स्वीकार करता है। हमारे पूर्वज ऋषि यह आज के भाषा में कहा जाए तो साक्षात् वैज्ञानिक ही रहे हैं जिन्होंने अपने अलौकिक दृष्टि से या कहें बुद्धिसामर्थ्य से इस समस्त ब्रह्माण्ड के उत्पत्ति एवं प्रलय का गहन अध्ययन कर वेदों और यज्ञीय कर्मकाण्ड के माध्यम से इन रहस्यों को हमारे समक्ष रखा है। सृष्टि से संबंधित समस्त वैदिक सिद्धान्तों का अवलोकन कर यह बात तो स्पष्ट है कि यह स्थूल जगत् जो भी दृश्यमान है ये पंचमहाभूतों के आपस के तालमेल से बना है। इन पंच महाभूतों में आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी का समावेश है।

सृष्टि के जनक इन पंच महाभूतों में परस्पर जो मिलकर कार्य करने की प्रक्रिया है वेदान्त शास्त्र में इसे पंचीकरण प्रक्रिया के नाम से समझाया है।[1] स्थूलदृष्टि से देखने पर हमें इन पांच तत्वों का आपस में संबंध दिखाई नहीं देता। किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखने से ये बात स्पष्टरूप से दिखाई देती है। वेदान्त शास्त्र के पंचीकरण के इस सिद्धान्त में किस तरह ये तत्व आपस में मिले होते हैं इस को यहां दर्शाया गया है।

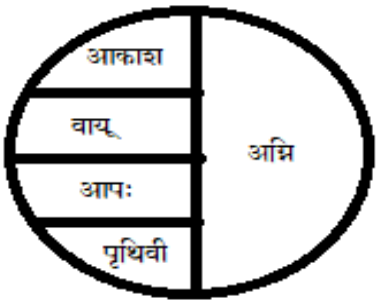

प्रस्तुत विषय में हम इन पंच महाभूतों में से अग्नि इस तत्व पर विशेषरूप से चर्चा कर रहे हैं। दर्शन शास्त्र के अनुसार जब इन पंचमहाभूतों की उत्पत्ति हुई तो आकाश तत्व से अग्नि की उत्पत्ति बताई है। "**आकाशात् वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी**"[2] इस तरह यह क्रम दर्शाया है।

अग्नि शब्द का अर्थ

अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति शब्दकोशों मे अत्यन्त विस्तारित रूप से की गई है। 'शब्दकल्पद्रुम ' एवं 'वाचस्पत्यम्' नाम के ऐसे संस्कृत के बृहत् शब्दकोश हैं जो कि प्राचीन एवं प्रामाणिक शब्दकोशों में आते हैं। इनमें अग्निशब्द के अर्थ को विस्तार से समझाया है। यहां मैं वैदिक दृष्टि से अग्नि के अर्थ को एवं माहात्म्य को दर्शाना चाहूंगा। क्योंकि हमारा उद्देश्य ही वैदिक विज्ञान् को उजागर करने का रहा है।

जैसे ही वैदिक शब्दों के अर्थ पर चिन्तन करने का प्रसंग आते ही निरुक्त शास्त्र सर्वप्रथम दृष्टिपटल पर आता है। क्योंकि व्याकरण के अनुसार हम शब्दों पर विचार करेंगे तो यह लौकिक अर्थ को सर्वप्रथम उजागर करता है। जब कि निरुक्त शास्त्र जो वैदिक शब्दों के अर्थ पर ही विशेष चिन्तन करता है। अतः इसी पर विशेषतया विश्लेषण यहां करेंगे। सामान्यतः किसी भी वस्तु का नाम उस वस्तु में निहित गुण एवं कर्म को देखकर ही रखा जाता है। यही सिद्धान्त अग्नि के लिए भी है। पृथिवी पर स्थित अग्नि यह

ऊर्ध्व गति करता है। अतः अगि धातु जो ऊर्ध्वगति के लिए प्रयुक्त है उस से अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है। '**अङ्गति ऊर्ध्वं गच्छति इति अगि तत्गुणविशिष्टः स एव अग्निः**' ।

इस प्रकरण में निरुक्तकार द्वारा की गई अग्नि शब्द की व्युत्पत्ति विशेष चिन्तनीय है। निरुक्तकार ने अग्नि शब्द को तीन धातु से जन्य माना है। अर्थात् तीन क्रियाएं या कहें तीन विशेष गुण इस में पाए जाते हैं। इस निर्वचन प्रक्रिया में शाकपूणि आचार्य ने इण् गतौ धातु से , दह – भस्मीकरणे धातु से तथा णीञ्- प्रापणे धातु से अग्नि शब्द को निष्पन्न माना है। इस में एतिधातुजन्य अयन शब्द से 'अ' कार का ग्रहण किया गया। दह भस्मीकरणे धातुजन्य दग्ध शब्द बनाकर वहां से 'ग'कार का ग्रहण किया गया है। और नी धातु को ह्रस्व कर नि का ग्रहण कर अग्नि शब्द बनाया गया है। अर्थात् एक ऐसा तत्व जो गति करता है तथा जो भस्म करता है और जो अन्यों को अपने साथ ले जाता है उसे अग्नि कहा जाता है । ये तीनों कर्म अग्नि के मूल स्वभावतः कर्म हैं। ऋषियों ने अग्नि के इस नाम से अग्नि के ऐसे मूलभूत गुण हमें बताए हैं जिस के आधार पर हम अग्नि का उस उस कार्य के लिए प्रयोग कर सकें। आज के परिपेक्ष में देखा जाए तो हम साक्षात् उन सभी कर्मों के लिए अग्नि का याथावत् प्रयोग कर भी रहे हैं जिस कारण इसे अग्नि कहा गया है।

जिन के माध्यम से यह समस्त सृष्टिकार्य सुचारु रूप से चलता है उन को वेद में देवता के नाम से भी संबोधित किया है। अतः पंचभूतों के द्वारा सृष्टि को संचालित करने के कारण अग्नि को भी देवता माना गया है। किन्तु समस्त देवताओं से अग्नि का यह वैशिष्ट्य है कि इस को समस्त देवताओं का प्रतीक या कहें स्वरूप माना है। अर्थात् दिव्य होने से देवता यह देव शब्द का जो नामनिर्वचन किया जाता है उस में देवताओं का दिव्य गुण है वह अग्नि के कारण है। प्रकाशित होना या प्रकाशित करना यह अग्नि का ही गुण है। अतः समस्त देवता दिव्यगुणयुक्त होने से अग्निगुणयुक्त हैं। इसी भाव को दर्शाने के लिए श्रुति हमें '**अग्निर्वै सर्वा देवताः**' इस वचन से अग्नि का सर्वदेवव्यापकत्व दर्शाती है। यही अग्नि सर्वजगत् के आत्माके रूप में भी वर्णित है। जैसे कि साक्षात् अग्नि स्वरूप सूर्य को श्रुति ने '**सूर्य आत्मा जगतः**'[3] इस वचन से अग्नि का सर्वात्मकत्व दर्शाया है। इसी कारण यह समस्त जगत् का द्रष्टा एवं जानने वाला होता है। इसी कारण इसे 'जातवेद' नाम से संबोधित किया है। क्योंकि संसार में जो कुछ उत्पन्न है उन सभी में वह आत्मतत्व उपलब्ध है। इसी सिद्धान्त को भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं को सूर्य का प्रतीक बताकर संसार के समस्त जीवों में वैश्वानर के रूप में अपना वास्तव्य बताकर अग्नि का ही सर्वात्मकत्व सिद्ध किया है। इस तरह सर्वात्मक यह अग्नि समस्त जगत् का आत्मा के रूप में स्थित होने से साक्षात् सर्वजगत् व्यापक ब्रह्मस्वरूप ही है ऐसा कहने पर अतिशयोक्ति नही होगी। क्योंकि इस बात को स्पष्ट करते हुए गीता में कहा है कि **'तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्टितम्'**।[4] इस तरह सर्वत्र व्यापक इस अग्नि तत्व के महत्व को समझ कर इसी पर प्रकाश डालने का यहां प्रयास किया गया है।

इस अग्नि का सर्वात्मकस्वरूप गुण को देखते हुए ही इसी को समस्त देवताओं का स्वरूप मानकर इस की उपासना करने से समस्त देवतओं की आराधाना करने का फल मिलना तय है इस में लेशमात्र भी संदेह नहीं है। अतः स्वाभाविक संदेह होता है कि इस अग्नि की आराधना कैसे करें? जिस से समस्त देवताओं की संतुष्टि हो। इस के उत्तर में एक ही उत्तर है कि यज्ञोपासना ही अग्नि की उपासना का मार्ग है। जैसे अग्नि का सर्वदेवश्रेष्ठत्व पूर्व में ही सिद्ध है उसी तरह अग्नि की उपासनारूप यज्ञकर्म को भी ' **यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म**'[5] इत्यादि वाक्यों से सर्वश्रेष्ट कर्म के रूपमें शास्त्रकारों ने बताया है। अतः समस्त देवताओं की संतुष्टि अग्नि से ही हो सकती है। देवताओं को पुष्ट करना इस लिए जरूरी है क्योंकि यही देवता इस सृष्टि को यथावत् सुचारु रूप से चलाने के लिए निरंतर कार्यरत रहते हैं। अतः यदि सतत कार्य करते हुए इनमें शिथिलता आ जाए तो सृष्टिकार्य में बाधा आने की संभावना निश्चित है। इसीलिए देवताओं की पुष्टि अत्यन्त आवश्यक है। यही कार्य अग्नि देवता की उपासना से किया जाता है जिसे यज्ञकर्म कहते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण जी भी इस बात को समझाते हुए गीता में उपदेश देते हैं कि

'देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।"[6]

इस प्रकार मनुष्य हित के लिए तथा समस्त सृष्टि के हित के लिए देवताओं की पुष्टि आवश्यक है। जो अग्नि की उपासना के बिना (यज्ञ के बिना) असंभव है क्योंकि "**अग्निर्वै सर्वा देवता**"[7] इस श्रुतिवचन के अनुसार यह अग्नि समस्त देवताओं का प्रतीक है। यही अग्नि समस्त देवताओं की पुष्टि के लिए यज्ञ में आहुत हवि को देवताओं तक ले जाता है जिस से देवता संतुष्ट होते हैं। अग्नि के इस हविवहन कार्य को देखते हुए ही ऋषियों ने इसे वह्नि नाम से संबोधित किया है।[8] इस तरह अन्य देवताओं की अपेक्षा अग्नि का सर्वदेवात्मकत्व होने से सर्वदेवताप्रधान के रूप में शास्त्रों में निर्दिष्ट स्वरूप को देखते हुए अत्यन्त विस्तृत रूप में वेद में वर्णित इस विषय को संक्षेप से दर्शाने का प्रयास करते हुए अपने लेखनी को यहीं विराम देता हूं।

सन्दर्भ ग्रन्थः

[1] वेदान्तसारः
[2] वेदान्तसारः
[3] वा.सं १३/४६
[4] भग.गी. ३/१५
[5] शु. य. सं. महीधर भाष्य प्रथम मंत्र का भाष्य
[6] भग.गी. ३/११
[7] मैत्रायणीसंहिता ३/६/१
[8] देवान् प्रति हविः वहति